Approved by UGC
Journal No. 48825

ISSN 2229-4066

SAMBHASHYA

A Journal of Various Researches

Vol. IX | No. 2, Part-III | July-December, 2017

Custodian

Prof. Narbadeshwar Rai
Department of Hindi
Banaras Hindu University, Varanasi

Editor in Chief

Dr. Ravi Kant Rai

Managing Editor

Dr. Amar Bahadur Singh

Editor

Anil Kumar Pandey

Published by :
Akhil Bhartiya Sahitya Samnvya Samiti
Varanasi, U.P. (INDIA)

भारतीय शास्त्रीय संगीत की गुरु–शिष्य परंपरा एवं संस्थागत
शिक्षण पद्धति : एक तुलनात्मक अध्ययन 64–67
हनुमान प्रसाद गुप्ता
अवधीभाषा पर संस्कृत का प्रभाव 68–73
अलकेश कुमार मिश्र
संस्कारः किमर्थम्? 74–75
डॉ0 अमोलमणिमिश्रः
संस्कृतसाहित्य में भगवती गंगा 76–78
डॉ० हर्षानन्द उनियाल
चंपारण के नील कृषकों की शोषण से मुक्ति में गाँधी जी का योगदान 79–81
डॉ0 मनोज कुमार सिनसिनवार
संस्कृत वाङ्मय में आश्रम 82–84
डॉ0 गार्गी ओझा
कालिदास के नाटकों में नारी चित्रण 85–86
अंकिता सिंह
वैशेषिक दर्शन में ईश्वर 87–87
डॉ0 शिल्पी श्रीवास्तव
महाकवि भास के रूपकों में समाहित उद्देश्य 88–89
अपर्णेश कुमार शुक्ल
नैषध में दर्शन 90–90
डॉ0 समीर श्रीवास्तव
संस्कारों की वर्तमान समाज में प्रासंगिकता एवं उपादेयता 91–93
गोपाल लाल सालवी
साधना के समर्थ साधन के रूप में संगीत 94–96
डॉ0 दीप्ति सिंह
सुधीर पटवर्धन के चित्रों में निम्न वर्ग 97–99
डॉ0 नरेन्द्र सिंह

145

HASHYA: ISSN 2229-4066
ed by: Akhil Bhartiya Sahitya
a Samiti, Varanasi, U.P. (INDIA)

UGC Journal No. 48825
Vol.: IX, No.: 2, Part III, July-December, 2017
Page No.: 94-96

साधना के समर्थ साधन के रूप में संगीत

डॉ0 दीप्ति सिंह*

*एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर

भारतीय संगीत–शास्त्र का यह वैशिष्ट्य है कि उसके ग्रन्थों में संगीत के लिए, विशेषतः गीत के लिए अनेक ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो आध्यात्मिक–जीवन में उसकी उपयोगिता का महत्त्व बताया गया है। इन उल्लेखों को स्थूलरूप से निम्नलिखित शीर्षकों में रखा जा सकता है–

नाद–प्रशंसा : यथा– **नादादभिव्यज्यते वर्णः, पदं वर्णात्पदाद् वचः। वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्।।1**

नाद से वर्ण की, वर्ण से पद की और पद से वचन (वाक्य) की अभिव्यक्ति होती है। सब व्यवहार वाणी से ही है, इसलिए जगत् नाद के अधीन है।

नादोपासना की प्रशंसा : यथा– **नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः।।2**

नाद की उपासना से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन देवों की उपासना हो जाती है, क्योंकि ये नादात्मक हैं यानी इनका स्वरूप नाद है।

देवत्व की विभिन्न अभिव्यक्तियों में गीत के प्रति प्रेम : यथा– **गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः। गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशंगतः।। सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणाऽऽसक्ता सरस्वती।।3**

सर्वज्ञ देव पार्वतीपति गीत से प्रसन्न होते हैं, अनन्त भी वंशी–ध्वनि के वश में हैं, ब्रह्मा सामगान में रत हैं और सरस्वती वीणा में आसक्त हैं।

चारों पुरुषार्थों की गीत में साधकता : यथा– **तस्य गीतस्य माहात्म्यं कः प्रशंसितुम् ईशते। धर्मार्थ–काम–मोक्षाणामिदमेवैक–साधनम्।।4**

गीत का माहात्म्य कौन कह सकता है? धर्मार्थ काम मोक्ष का यही एक साधन है। संगीत–शास्त्र के ग्रन्थों के अतिरिक्त स्मृति पुराण आदिकों में एवं तत्सम्बन्धी साहित्य में संगीत के प्रशंसात्मक अनेकों वाक्य मिलते हैं। उदाहरण के लिए–

वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः। तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति।।
गीतज्ञो यदि गीतेन नाप्नोति परमं पदम्। रुद्रस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते।।5

जो वीणावादन के तत्त्व या सार को जानता है, जो श्रुतियों और जातियों (के प्रयोग) में कुशल है, जो ताल का ज्ञाता है, वह मोक्ष मार्ग को प्राप्त होता है। गीतज्ञ यदि गीत के द्वारा परम पद को प्राप्त नहीं होता तो वह रुद्र का अनुचर बन कर उनके सङ्ग में आनन्द पाता रहता है। एक विख्यात पौराणिक उक्ति इस प्रकार है–

अर्चनादधिकं ध्यानं ध्यानात् कोटिगुणं जपः। जपात् कोटिगुणं गानं गानात् परतरं नहि।।

ध्यान पूजा से अधिक है, जप ध्यान से अधिक है, गान जप से अधिक है और गान से अधिक कुछ भी नहीं है। ऊपर उद्धृत वाक्यों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकल सकते हैं– (1) संगीत न केवल उपासना और साधना का एक उपाय है, अपितु उत्कृष्ट उपाय है। (2) देवत्व की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ (देव–देवी) न केवल संगीत से प्रेम रखती हैं, अपितु उनकी सर्वोत्तम धारणा यही हो सकती है कि वे नादात्मक हैं। (3) संगीत की साधना के विभिन्न स्तर हैं। उसके निम्न स्तरों में धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति होती है और उच्च स्तर में मोक्ष की। हम संगीत के माहात्म्य के इन तीनों पहलुओं को कुछ विस्तार से समझने का यत्न करेंगे और इस परम्परा की दार्शनिक भित्ति का भी सन्धान पाना चाहेंगे। ये तीनों पहलू एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसलिए इन्हें पृथक्–पृथक् रूप से लेना संभव नहीं होगा, किन्तु उपसंहार में इन तीनों के साथ पूरी बात को संबद्ध करने का यत्न किया जाएगा। मौलिक सत्ता अथवा परम तत्त्व को ब्रह्म कहा जाता है और वह निरपेक्ष, तर्कातीत तत्त्व है। यह सत्ता हमारे उच्चतम अनुभव में अस्ति (विशुद्ध निरुपाधिक सत्ता), भाति (चित्) और प्रियं (आनन्द) के रूप में प्रकट होती है। आनन्द के प्रसंग में ब्रह्म को 'भूमन्' और कभी–कभी मधु भी कहा जाता है। इस प्रकार वह आनन्दात्मक चैतन्य – यो वै भूमा तत्सुखम्। नाल्पे सुखमस्ति।6 यह आनन्द अथवा रस सत्तामात्र की व्यापक पृष्ठभूमि है। अनन्त आकाश अथवा असीम अर्णव की भाँति यह आनन्द विश्व में सभी सत्ताओं का आधार है। इन दो उपमाओं में आकाश विशेषतः सत् और चित् के वर्णन में उपयोगी है और अर्णव विशेषतः आनन्द का सूचक है। वास्तव में ये दो तत्त्व पृथक नहीं किये जा सकते। आकाश निःस्पन्द अधिष्ठान का द्योतक है और अर्णव मूलस्पन्द का। महामौन को मूलवाक् में अभिव्यक्त करता है महानाद, जिसे ओंकार या प्राणब्रह्म भी कहा जाता है। इस प्रकार ओंकार के रूप में महानाद सृष्टि की प्रथम अभिव्यक्ति है। इसका न केवल सत् और चित् से अपितु आनन्द से सम्बन्ध है अर्थात् यह तीनों की अभिव्यक्ति है। आनन्द का मूलस्पन्द से सीधा सम्बन्ध है और सत्–चित् उसका अधिष्ठान है, इसलिए आनन्द को ही समग्र सृष्टि का उद्गम–स्थान, पोषक और विलय–स्थान कहा जाता है।

आनन्दाद् ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।7

भूमा की प्रथम आत्माभिव्यक्ति है महानाद और भूमा तो रस अथवा आनन्द से अभिन्न है। भूमा अथवा आनन्द उस मूलस्पन्द का समग्र प्रकाश है जिससे सृष्टि का आरम्भ होता है, जिस पर वह स्थिर रहती है और जिसमें विलीन रहती है। रस अथवा आनन्द समग्र सृष्टि का 'हृत्' (सारभूत केन्द्र बिन्दु) है। संगीत द्वारा इस 'हृत्' तक पहुंचना सुगम हो सकता है क्योंकि (1) यह नादात्मक है, अतः मूलस्पन्द अथवा महानाद के अनुभव का यह सुखद और सुगम मार्ग हो सकता है (2) स्थूल स्तर पर भी संगीत भावों की स्वाभाविक और सार्वभौम अभिव्यक्ति के रूप में सर्वमान्य है। हाँ, यह अवश्य है कि उपर्युक्त अनुभूति के लिए उचित भाव, मन और शरीर की शुद्धि तथा अनन्य लगन सर्वथा आवश्यक है।

SAMBHASHYA : Vol. IX, No. 2, Part-III, July-December, 2017 | ISSN 2229-4066

है उसकी चलता से वादी स्वर को गति मिलती है और इस प्रकार स्खलसित रस का उल्लसित और विलसित में विकास होता है। इस प्रकार की प्रस्तुति के लिए नादब्रह्म + बिन्दुब्रह्म का कलाओं में विस्तार अपेक्षित है जिसे सुषम कलावितान कह सकते हैं। कलाओं की अभिव्यक्ति के क्रम में स्वर का विवाह छन्द से हो जाता है, 'अमेय' का गठबन्धन 'मेय' से हो जाता है।

भारतीय संगीत की कला और विज्ञान का आधार दर्शन में किस प्रकार मिल जाता है इसका संकेत ऊपर दिया गया है। इसी प्रसंग में कुछ अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं, यथा–

(1) कलनी शक्ति, जो कलाओं के रूप में अभिव्यक्ति का क्रम बनाती है, मूलतः षडङ्ग योजना के अनुसार कार्य करती है। ये छः अङ्ग 'रं' 'लं' 'वं' इत्यादि छरू बीजाक्षरों में अनुस्यूत है। मूल राग भी छः ही हैं–राग–रागिणी–पद्धति में तो वैसा हैं ही, प्राचीन ग्राम–राग–पद्धति में भी शुद्ध राग छः ही हैं। मूल रागों की यह संख्या (6) मनुष्य–शरीर में छः चक्रों से भी संबद्ध है। राग–रागिणी–पद्धति के छः रागों के साथ छः बीजाक्षरों का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। उदाहरण के लिए–'ऊँ वं' को मेघ राग का बीज माना जा सकता है क्योंकि 'वं' जल का बीजाक्षर है; उसी प्रकार 'ऊँ रं' दीपक राग का बीज हो सकता है। क्योंकि 'रं' अग्निबीज है।

(2) 'गमक' का भारतीय संगीत में महत्त्वपूर्ण स्थान है। गमक के द्वारा ही 'नाद' की 'मूर्छा' टूटती है और आलाप से स्वरों का 'नृत्य' आरम्भ होता है। 'गमक' = 'गमन' कराने वाला यानी ज्ञान कराने वाला। स्वर का वैचिष्य–विलास गमक से ही होता है। यह शब्द शास्त्रीय दृष्टि से बहुत सार्थक है।

(3) भारतीय संगीत की प्राचीन पद्धति में मूर्च्छना शब्द का मौलिक महत्त्व है। 'मूर्छ' धातु के दो अर्थ हैं मोह और उभार।दोनों अर्थों का साङ्गीतिक मूर्च्छना में स्थान है। मूर्च्छना के द्वारा ही नाद अपनी अलसित (मूच्छित) स्थिति में से जागता है अथवा अव्यक्त बीजरूप बिन्दु का सुषम कलाओं में विकास होता है। पारिभाषिक शब्दों में कहें तो मूर्च्छना ही ग्राम के सातों स्वरों की संभावनाओं को व्यक्त करती है। विलोम क्रम में ग्राम पुनः अव्यक्त बन जाता है। इस प्रकार 'मूर्छ' का उभार अर्थ मूर्च्छना में लागू होता है। कमल की पंखुड़ियों का विकास और संकोच उदाहरण के रूप में यहाँ समझा जा सकता है। अभिव्यक्ति के क्रम में 'अखण्ड' और 'अमात्र' रस खण्डित और विलोम क्रम से खण्डित और मात्रिक रस पुनः अखण्ड और अमात्र हो जाता है।

'प्रियं अथवा आनन्द ही तो 'अस्ति भाति' का 'ह्वत्' है और सृष्टि एवं विलय में उसका एक मात्र काम है सुषमता लाना अथवा मधुच्छन्दः बनना। सुषमता ही तो संगीत का प्राण है। सृष्टि क्या है–निर्दोष ताल में 'नृत्य' है, आन्तरिक घनिष्ठता में 'वादन' है और आनन्दातिरेक में गान है। नृत्य और वादन में निर्दोष 'मात्रा' (नाप) की आवश्यकता है और गान में उन दोनों (नृत्य–वादन) का उत्कर्ष है अमेय आनन्द में। नृत्य और वादन का व्यापार सुषम कलाओं में चलता है और गीत में नाद बिन्दु का संयोग है, जहाँ से कि कलाओं का उद्गम होता है। नृत्य–वादन में व्यासवृत्ति प्रधान है अर्थात् काल और देश के प्रसंग में पृथक्करण प्रमुख है और गान में समास अथवा समाहृति प्रधान है अर्थात् एकीकरण प्रमुख है। प्राणन = प्राणव्यापार का तालात्मक निःसरण नृत्य है, मनन की वाद्यों से घनिष्टता वादन है अर्थात् मन में कल्पित स्वर सन्निवेश की वाद्य पर अवतारित रूप के साथ घनिष्टता है, और गीत में गति, भावन और आह्वदन है, जो नृत्य और वादन की भी मौलिक प्रेरणा बनते हैं। वाक–प्राण–मन के वैदिक त्रिक की भाषा में कहें तो नृत्य में प्राण प्रधान है, वादन में मन और गान में वाक् । नृत्य का सम्बन्ध हमारे शरीर से, वादन का मस्तिष्क (बुद्धि) से और गीत का हृदय से कहा जा सकता है। इसीलिए हिन्दू संगीत की परम्परा में गान में आलाप के द्वारा 'राग' का संवेदन–आवेदन सर्वोत्ष्ट रूप से हो सकता है, क्योंकि उसमें एकीकरण की उच्चतम अवस्था की संभावना है।

उपसंहार से पूर्व यह कहना आवश्यक है कि ऐसे लघु लेख में केवल उदाहरण–रूप से कुछ संकेत देना ही सम्भव है जिससे हिन्दू संगीत के वैदिक और तान्त्रिक (यौगिक) आधार का दिक्सूचन हो सके। इस विराट् विषय के साथ कुछ भी न्याय करना सम्भव नहीं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि हिन्दू संगीत का एक ओर शरीर–मूलक हठयोग से घनिष्ठ सम्बन्ध है और दूसरी ओर मनोमूलक राजयोग से। संगीत में वाक्, प्राण, मन का समी स्तरों पर समत्व साधा जाता है। अतः संगीत बड़ी सुगमता से किसी भी साधना–पद्धति का सहगामी बन सकता है, जो शरीर को, मन को अथवा वाणी को आधार मानकर चलती हो।

इस लेख के उपक्रम में जो तीन निष्कर्ष रखे गये थे उन्हें यहाँ उपसंहार में दोहरा लेना उचित होगा। (1) भारतीय संगीत साधना का उत्कृष्ट उपाय है क्योंकि उसकी संकल्पनाएँ वैदिक दर्शन, योग और तन्त्र पर आधारित है। (2) देवत्व की विभिन्न अभिव्यक्तियों की धारणा उन्हें नादात्मक समझने से सर्वोत्कृष्ट रीति से हो सकती है क्योंकि नाद मौलिक अभिव्यक्ति भी है और बीजरूप बिन्दु भी है। देव–देवियों की धारणा या तो मौलिक शक्तियों की अभिव्यक्ति के रूप में होती है अथवा इस व्यक्त सृष्टि के बीज के रूप में। (3) भारतीय संगीत की संकल्पना ऐसी है कि उसमें निम्नतम से लेकर उच्चतम स्तरों की साधना के लिए अवकाश है और मुक्ति तथा भक्ति का सम्बन्ध स्वाभाविक रूप से उच्चतम स्तर के साथ है।

सन्दर्भ :

1. संगीत रत्नाकर, 1–2–2
2. संगीत रत्नाकर, 1–3–2
3. संगीत रत्नाकर, 1–1–26, 27
4. संगीत रत्नाकर, 4–1–30
5. याज्ञवल्क्य स्मृति 3–4–115, 116
6. छन्दोग्य 7.23.1
7. तैत्तिरीय उपनिषद 3–6

◆◆◆